दूसरा सप्तक की भूमिका और अज्ञेय की आलोचना दृष्टि

डॉ. संगीता रानी
भारती कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन्होंने अपने सृजन और चिंतन से हिन्दी जगत को गहरे तक प्रभावित किया। 'हिन्दी साहित्य में आधुनिक बौद्धिक संवेदना का सूत्रपात करने वाले रचनाकारों में अज्ञेय का नाम शीर्ष पर है।'[1] इनके साहित्य के संदर्भ में हालांकि इनके कवि व्यक्तित्व की चर्चा सबसे अधिक होती रही है तथापि यह तथ्य है कि उन्होंने कविता के अतिरिक्त कहानी, उपन्यास, आलोचना, निबंध, संस्मरण, रिपोर्ताज, डायरी, यात्रावृत इत्यादि विभिन्न विधाओं में भी उल्लेखनीय रचनाकर्म किया। अज्ञेय एक समादृत संपादक भी रहे।[2] पत्र-पत्रिकाओं के संपादन के अलावा उन्होंने अपने दौर के उभरते प्रमुख कवियों की रचनाओं को भी चार सप्तकों के माध्यम से प्रकाशित किया। अज्ञेय ने ऐसा महसूस किया कि ये कवि अपने दौर के उल्लेखनीय कवि हैं, इसलिए इन्हें समूहिक तौर पर मंच मिलना चाहिए। इसी सोच को कार्यरूप देते हुए अज्ञेय ने 'तारसप्तक', जिसे पहला सप्तक भी कहा जाता है, का प्रकाशन 1943 में किया। अज्ञेय के संपादन में प्रकाशित इस काव्य-संग्रह में कुल सात कवियों की कविताएं संग्रहित हुईं। ये कवि थे - गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और स्वयं अज्ञेय। इसी तरह आगे चलकर 1951, 1959 तथा 1979 में क्रमश: दूसरा, तीसरा और चौथा सप्तक प्रकाशित हुआ। इन सभी संग्रहों में हर बार अलग अलग सात कवियों की कविताएं प्रकाशित हुईं।

अज्ञेय के संपादन में प्रकाशित 'तारसप्तक' हिंदी साहित्य में एक नई काव्यात्मक क्रांति लेकर आया। हिन्दी साहित्य जगत में इसकी पर्याप्त चर्चा हुई। जब चर्चा हुई तो इसे लेकर तमाम प्रकार के प्रश्न भी उठे। स्वाधीनता प्राप्ति के आसपास की कई महत्वपूर्ण आरंभिक प्रवृत्तियों की सामूहिक अभिव्यक्ति रूप में तारसप्तक का प्रकाशन एक उल्लेखनीय प्रयास था। तारसप्तक को जहां कुछ आलोचकों ने प्रयोगवाद का आरंभ माना और उसके संदर्भ में वाद-विवाद हुए, वहीं नई कविता और कई अन्य नई काव्य प्रवृत्तियों के स्वरूप को समझने समझाने और नई दिशा देने के क्रम में भी तारसप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक और चौथा सप्तक ने आलोचकों, समीक्षकों का ध्यान आकृष्ट किया।

अज्ञेय के संपादकत्व में 1943 में तारसप्तक (पहला सप्तक) का प्रकाशन हिंदी-साहित्य में जगत की एक महत्वपूर्ण घटना कहा जा सकता है। इसमें संकलित कविताओं के साथ ही संकलन की भूमिका भी सर्जकों, आलोचकों के बीच चर्चा के केंद्र में रही। "तारसप्तक की भूमिका हिंदी-साहित्य में कई नवीन अवधारणाओं का घोषणा-पत्र कही जा सकती है जिसने परम्परा, आधुनिकता, प्रयोग-प्रगति, काव्य-सत्य, कवि का सामाजिक दायित्व, काव्य-शिल्प, काव्य-भाषा, छंद आदि की तमाम बहसों को पहली बार उठाकर साहित्यालोचन को मौलिक स्वरूप दिया।"[3] अज्ञेय ने स्वयं समकालीन चुनौतियों, विमर्शों, प्रश्नों से टकराते हुए कई नवीन साहित्यिक संभावनाओं के द्वार भी खोलें। तारसप्तक के प्रकाशन से हिंदी साहित्य जगत में प्रयोगवाद की चर्चा शुरू हुई और बहुत तीखे वाद विवाद हुए। डॉ. जगदीश गुप्त का मानना है 'जब प्रगतिवादियों एवं उनके पक्षधर समीक्षकों तथा आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने प्रयोगवादियों पर तीखा और खुला प्रहार किया और अज्ञेय का व्यक्तित्व उनकी आंखों में गड़ने लगा तब उसकी ओर साहित्यिक वर्ग का ध्यान गया और जगह-जगह उसका उल्लेख किया जाने लगा। तारसप्तक में संकलित कवियों और उनकी कृतित्व पर आलोचना-प्रत्यालोचना का दौर शुरू हो गया।'[4]

अज्ञेय द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' कई मायनों में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। पहले सप्तक की तरह ही दूसरे सप्तक में भी अज्ञेय ने हिंदी के नये सात कवियों को इसमें

स्थान दिया। इसमें जिन कवियों की रचनाएँ संकलित हुईं वे हैं- भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, नरेश मेहता, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय एवं धर्मवीर भारती। इसकी भूमिका में अज्ञेय ने एक सम्पादक के रूप में न सिर्फ इसमें संकलित कवियों और उनके कविताओं पर बात की अपितु साथ ही तारसप्तक पर उठे विवादों, चर्चाओं और कटु आलोचनाओं का खंडन करते हुए बदलते समय के अनुरूप कविता और आलोचना के मानदंडों पर भी बात की।

अज्ञेय द्वारा संपादित सप्तकों पर हुई चर्चा के केंद्र में इन संकलनों की कविताओं से अधिक इनकी भूमिकाएं रहीं। इन भूमिकाओं को केन्द्रित करते हुए कविताओं की चर्चा होती रही। इस कड़ी में पहले, दूसरे और तीसरे सप्तक की भूमिकाओं की केंद्रीय भूमिका रही। पहले सप्तक में भूमिका लिखते हुए अज्ञेय ने जहां इस संकलन में संकलित कवियों की कविताओं को देखने, मूल्यांकन करने के लिए जिन बिन्दुओं की अपेक्षा की, वे ही विवाद की मूल वजह बन गए। इन विवादों को केन्द्रित करते हुए उनका उत्तर दूसरे एवं तीसरे सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने देने का प्रयास किया। इन भूमिकाओं से उपजे विवाद और संवाद ने तत्कालीन हिन्दी कविता के मूल्यांकन एवं रचना और आलोचना के मानदंडों पर नए सिरे से विचार करने के अवसर उपलब्ध कराए।

'तारसप्तक' की भूमिका में अज्ञेय द्वारा उठाए गए कई महत्वपूर्ण मुद्दों और संकलित कविताओं की आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने निर्मम आलोचना की। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक साहित्य' में 'प्रयोगवादी रचनाएं' शीर्षक समीक्षात्मक निबंध में इस पर विस्तार से बात की। 'तारसप्तक' की भूमिका में अज्ञेय द्वारा प्रयुक्त 'प्रयोग' शब्द के आधार पर ज़ोर देते हुए उन्होंने इसमें संकलित कवियों और कविताओं को प्रयोगवादी घोषित किया एवं उन पर 'अतिरिक्त बुद्धिवादिता' और 'अनिश्चित मानसिक स्थिति' आदि आरोप लगाते हुए उनकी रचनाओं के विषय में "उलझी हुई संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए अथवा अभेद्य क्षेत्रों में जाने की स्वाभाविक प्रेरणावश सीधी तिरछी लकीरों, सीधे या उल्टे अक्षरों का उपयोग करते हुए किसी विषय पर सहमत न होने वाले अन्वेषियों की रचना"[5] कहा। उनके मत में अन्वेषण के लिए इन कवियों के पास अन्वेषी की दृष्टि भी नहीं केवल 'दृष्टिकोण' है। उनका कहना था कि महत्वपूर्ण विषयों पर इन कवियों की मत भिन्नता और किसी विषय पर सहमत न होना, इनकी स्वछंदता और व्यापक समाज के प्रति गहन आत्मीय संबंधों से कटी विद्रोह भावना का सूचक है। उनका मानना है कि – प्रथमत: तो प्रयोगवादी रचनाएं पूरी तरह काव्य की चौहद्दी में नहीं आती और वे अतिरिक्त बुद्धिवाद से ग्रस्त हैं। दूसरे, प्रयोगवादी रचनाएं वैचित्र्यप्रिय हैं और वृति का सहज अभिनिवेश उनमें नहीं। तीसरे यह कि प्रयोगवादी रचनाएं वैयक्तिक अनुभूति के प्रति ईमानदार नहीं हैं और सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा नहीं करतीं।[6]

डॉ नगेंद्र ने भी 'विचार और विवेचन' नामक पुस्तक में 'तारसप्तक' की भूमिका की कटु आलोचना की। अपने निबंध 'हिंदी की प्रयोगवादी कविता' में वे कहते हैं कि ये कवि साधारणीकरण के मूल सिद्धांत का ही निषेध करते हैं।[7] नूतनता के प्रति सर्वग्राही मोह से बंधे ये कवि हमेशा परिचित को छोड़ अपरिचित की खोज में रहते हैं।[8] डॉ. देवराज 'तारसप्तक' पर यद्यपि सहानुभूतिपूर्ण रवैया रखते हैं तथापि उनकी भी कुछ आशंकाएं इस संग्रह को लेकर हैं। अपनी पुस्तक 'साहित्य- चिंता' में 'प्रयोगशील साहित्य' नामक निबंध में कहते हैं कि ये कवि हिंदी कविता को छायावादी आध्यात्मिकता और भावुकता की झंकार से मुक्त करना चाहते हैं साथ ही यह आशंका भी जाहिर करते हैं कि इसके कवि कविता के विषय से अधिक तकनीक पर ध्यान देते हैं, और टेकनीक या शैलीगत क्रांति लेकर आने वाला साहित्य टिकाऊ नहीं हो सकता।[9]

'तारसप्तक' को लेकर बड़े आलोचकों, समीक्षकों द्वारा लगातार प्रश्न उठाए गए। इस पर कई तरह की आलोचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में छपी, रेडियो गोष्ठियों का आयोजन हुआ और यह निरंतर चर्चा में बना रहा। आलोचकों द्वारा उठाए गए तरह-तरह के प्रश्नों और लगाए गए आरोपों का उत्तर देने हेतु अज्ञेय ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका लिखी। भूमिका का महत्व इस बात में है कि हिंदी काव्य संवेदना और रूप विधान की दृष्टि से हिंदी कविता और समीक्षा दोनों में कई नवीनताओं की घोषणा की गई है और जिससे हिंदी साहित्य की दिशा और दशा बदल गई। स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की आलोचना की पृष्ठभूमि के संदर्भ में दूसरा सप्तक की भूमिका विशेष उल्लेखनीय है।

डॉक्टर निर्मला जैन का कहना है "स. ही. वा. अज्ञेय शुद्ध आलोचक ना होते हुए भी अपने आलोचनात्मक विचारों के लिए हिंदी साहित्य के इतिहास में इसलिए उल्लेखनीय हैं। उन्होंने छायावादी कवियों से भी अधिक नई कविता के आस्वाद और मूल्यांकन के लिए उपयुक्त नई आलोचना के लिए आधार तैयार किया।"[10]

तारसप्तक में संकलित कवियों और उनकी कविताओं के संदर्भ में स्वयं अज्ञेय ने स्वीकार किया था कि "सातों एक दूसरे के परिचित हैं...किन्तु इससे यह परिणाम न निकाला जाय कि वे कविता के किसी एक 'स्कूल' के कवि हैं या कि साहित्य-जगत के किसी गुट अथवा दल के सदस्य या समर्थक हैं, बल्कि उनके तो एकत्र होने का कारण ही यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुंचे नहीं हैं, अभी राही हैं- राहों के अन्वेषी।"[11] अपने वक्तव्य में अज्ञेय ने यह स्पष्ट किया कि कि ये कवि आरंभ से ही किसी आंदोलन की योजना लेकर एक झंडे के तले एकत्रित नहीं हुए थे बल्कि उनमें काव्य सिद्धांत, वस्तु और शैली के स्तर पर साम्य का कोई अनुबंध अथवा कोई शर्त नहीं थी। अज्ञेय का मानना है कि काव्य संवेदना तथा वस्तु विधान की दृष्टि से भिन्न मत-वाले इन सात कवियों के बारे में समानता का एकमात्र बिंदु यही है कि इन सब में काव्य के प्रति एक अन्वेषी दृष्टिकोण है ये सभी कवि राहों के अन्वेषी हैं, ऐसे कवि जो कविता को प्रयोग का विषय मानते है। इनके कविकर्म का उद्देश्य जीवन-जगत के नये-नये क्षेत्रों का उद्घाटन और उन्हें नये भाषा संकेतों, नये प्रतीकों, नये उपमानों के माध्यम से नये रूप में, नयी परिस्थितियों के अनुरूप प्रस्तुत करना है। ये कवि ना तो किसी साहित्यिक या सामाजिक मतवाद से जुड़े हुए थे ना ही इनके जीवन दृष्टि और इनके रचना संसार में किसी प्रकार का कोई साम्य था। उन्होंने लिखा- "सभी महत्वपूर्ण विषयों में उनकी राय अलग-अलग है- जीवन के विषय में, समाज और धर्म और राजनीति के विषय में, काव्य-वस्तु और शैली के, छंद और तुक के, कवि के दायित्वों के- प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद हैं।"[12] समानता थी तो केवल इतनी कि इन सभी कवियों की रचनाओं में अन्वेषण तथा प्रयोग पर बल मिलता है। ऐसा कहते हुए अज्ञेय वस्तुत: यह स्पष्ट करते है कि इन सभी कवियों को किसी एक दल, विचारधारा या वाद से जोड़ना अनुचित होगा। जब ये कवि एक समझ और वाद के आग्रही नहीं तो इनका मूल्यांकन भी एक परिपाटी से नहीं किया जाना चाहिए। ध्यातव्य है कि कुछ आलोचकों द्वारा इस संग्रह को प्रयोगवाद का सूत्रपात करने वाला माना गया था।

नंददुलारे वाजपेयी द्वारा अन्वेषी दृष्टि के संदर्भ में जो आरोप लगाए गए इस संदर्भ में अज्ञेय की प्रथम सप्तक की भूमिका में स्पष्ट है कि "इस अन्वेषी दृष्टि का तात्पर्य यह नहीं कि इस संग्रह की सभी रचनाएं प्रयोगशीलता के नमूने हैं या कि इन कवियों की रचनाएं रूढि से अछूती हैं या कि केवल यही कवि प्रयोगशील है और बाकी सब घास छीलने वाले। वैसा दावा यहां कदापि नहीं, दावा केवल इतना है कि यह सातों अन्वेषी हैं।"[13] जहां राहों का निरंतर अन्वेषण होगा वहां दृष्टिकोण भी नवीन होगा। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का मानना है- दृष्टिकोण की इसी नवीनता के चलते समकालीन समीक्षा में रचना का महत्व, रचना प्रक्रिया की छानबीन, रचनाकार और उसके परिवेश के बीच होने वाली क्रिया प्रतिक्रिया आदि कुछ ऐसे विषय जुड़ गए जो स्वयं अज्ञेय की गहन चिंतनधारा के परिणाम थे।[14]

'तारसप्तक' की भूमिका में आए प्रयोग शब्द को आधार बनाकर अज्ञेय को प्रयोगवाद का सूत्रधार मानते हुए आलोचकों ने 'तारसप्तक' में संकलित कवियों को प्रयोगवादी कहा और इनकी रचनाओं की इस आधार पर जमकर आलोचना की। अज्ञेय ने यह आग्रह किया कि उन पर किसी वाद किसी ठप्पे प्रयोगवाद का आरोप ना किया जाए। अज्ञेय स्पष्ट करते हैं कि इस संग्रह में संग्रहित कवि अपने कृतित्व के आधार पर ही आंके जाएं ना कि किसी पूर्वाग्रह के शिकार हों। बावजूद इसके आलोचकों द्वारा 'तारसप्तक' की भरपूर चर्चा और आलोचना इस संदर्भ में की गई। दूसरा सप्तक की भूमिका में प्रयोगवाद के अनचाहे ठप्पे को अस्वीकार करते हुए अज्ञेय स्पष्ट करते हैं कि "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है; कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है। अत: हमें प्रयोगवदी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें 'कवितवादी' कहना।"[15] अज्ञेय प्रयोग को साध्य न मानकर साधन मानते हैं जिसके द्वारा कवि अभिव्यक्त किए जाने वाले सत्य की पहचान करता है। उनके लिए यह सत्य वस्तु और शिल्प दोनों के क्षेत्र में उपयोगी होता है। अज्ञेय की आलोचना प्रणाली में सबसे

महत्वपूर्ण है शब्द के साथ कवि का बर्ताव। यही प्रयोग का क्षेत्र है। अज्ञेय का सारा ज़ोर काव्य में ठीक या अर्थवान शब्द के प्रयोग को लेकर है।[16] अज्ञेय का मानना था कि बदलते युगीन सत्यों को अभिव्यक्त करने के लिए काव्य में परंपरा से चले आते साधन बहुत उपयोगी नहीं रहे। उनका मत था कि व्यक्तिगत अनुभूतियों के माध्यम से युगीन सामाजिक संघर्षों तथा अंतर्विरोधों की प्रभावी अभिव्यक्ति के लिए परंपराबद्ध छायावादी शिल्प और चेतना जड़ एवं निष्प्राण हो गई है-

काव्य के झंखाड़ में बाकी बचे बस
निविड़ छायावाद के निष्प्राण रूखे शूल।[17]

इस संदर्भ में नामवर सिंह लिखते हैं कि काव्य क्षेत्र में उन दिनों "सिद्धांत के स्तर पर छायावादी भावुकता, काल्पनिक और आदर्शवाद तथा उत्तर छायावादी बेफिक्री से भरी अल्हड़ता की निस्सारता सिद्ध हो चुकी थी। आवश्यकता थी उसे सामूहिक प्रभावशाली रूप देने की। 1943 में तारसप्तक का प्रकाशन उसी आवश्यकता की पूर्ति है।"[18] दरअसल अज्ञेय ने जीवन के जटिलता, कवि की उलझी हुई संवेदना, स्थिति परिवर्तन की असाधारण तीव्र गति, साधारणीकरण और संप्रेषण की समस्या जैसी कई नई बातों की चर्चा करते हुए नए भाव बोध को नई कविता के अनुरूप नए आलोचनात्मक मानदंडों की आवश्यकता पर बल दिया। तीसरा सप्तक में अज्ञेय लिखते हैं कि "नई कविता का अपने पाठक और स्वयं के प्रति उत्तरदायित्व बढ़ गया है। यह मानकर भी कि शास्त्रीय आलोचकों से उसका सहानुभूतिपूर्ण तो क्या, पूर्वाग्रह-रहित अध्ययन भी नहीं मिला है, यह आवश्यक हो गया है कि स्वयं आलोचक तटस्थ और निर्मम भाव से उसका परीक्षण करें। दूसरे शब्दों में परिस्थिति की मांग यह है कि कविगण स्वयं एक दूसरे के आलोचक बनकर सामने आवें।"[19]

प्रयोगों को आवश्यकता पर बल देते हुए एवं उन्हें रचनात्मकता से जोड़ते हुए अज्ञेय कहते हैं कि कोई भी कविता, कला अथवा रचनात्मक कार्य प्रयोगों के माध्यम से ही आगे बढ़ सकता है, अन्यथा वह मात्र हस्तलाघव बनकर रह जाता है। साथ ही वे स्पष्ट करते हैं कि प्रयोगों का महत्व जितना कर्ता के लिए है, सहृदय के लिए भी उतना ही अप्रासंगिक है। इसके लिए पारखी और गोताखोर का उदाहरण देते हुए वे स्पष्ट करते हैं कि पारखी मोती परखता है, गोताखोर के असफल उद्योग नहीं। गोताखोर का परिश्रम या प्रयोग तो मोती को सामने रखकर ही प्रासंगिक हो सकते हैं। आचार्य नंददुलारे वाजपेई का 'प्रयोगवादी रचनाएं' शीर्षक निबंध को तर्क विकृति के उदाहरण की श्रेणी में रखते हैं और आलोचकों से अपेक्षा करते हैं कि उन्हें पूर्वाग्रह रहित होकर तर्क पद्धति के आधार पर किसी भी रचना या रचनाकार की आलोचना करनी चाहिए। तारसप्तक में हुए प्रयोगों की चर्चा के क्रम को आगे बढाते हुए अज्ञेय हिंदी साहित्य जगत के समक्ष ऐसे कई नवीन सूत्र रखते हैं जिनसे हिंदी साहित्य में नई कविता और नई आलोचना के लिए एक उर्वर भूमि तैयार हो जाती है।

परंपरा की दुहाई देकर प्रयोग की निंदा करने वाले आलोचकों को संबोधित करते हुए करते हुए अज्ञेय कहते हैं कि परंपरा कोई पोटली नहीं जिसे सर पर लादकर निकल पड़े, बल्कि वह गहरा संस्कार है जिसे आत्मसात करना पड़ता है। "संस्कार देने वाली परंपरा कवि की परंपरा है अन्यथा वह इतिहास है, शास्त्र है, ज्ञान भंडार है, जिससे अपरिचित भी रहा जा सकता है।"[20] आगे वे कहते हैं कि परंपरागत कविता का भाव बोध तथा वर्तमान नये भावबोध में पर्याप्त अंतर है इसलिए इसे पारंपरिक कला पक्ष से नहीं, अपितु नवीन शिल्प विधान में प्रस्तुत करना होगा। अपनी गैर रोमांटिक वृति के कारण अज्ञेय परंपरा को नवीन संदर्भ में परिभाषित करते हुए इलियट के समकक्ष नजर आते हैं। इलियट ने कहा था "परंपरा जीवित संस्कृति का वह अंश है जो अतीत से दाय के रूप में प्राप्त होकर वर्तमान का निर्माण करती है और भविष्य का दिशा निर्देश करती है। परंपरा अविच्छिन्न प्रवाह है जिसमें अतीत, वर्तमान और भविष्य परस्पर सम्बद्ध हैं। परंपरा से जुड़ा रहकर भी या यों कहें कि परंपरा से जुड़ा रहकर ही कवि अपनी वैयक्तिक क्षमता को अधिक रमणीयता तथा सफलता के साथ व्यक्त कर सकता है। परंपरा के प्रति आसक्ति अंधानुकरण नहीं है और इसे दाय या विरासत के रूप में प्राप्त नहीं किया जा सकता। उसके लिए कठोर परिश्रम आवश्यक है, इतिहासबोध आवश्यक है।[21] इस इतिहासबोध में अतीत की अतीतता नहीं, उसकी वर्तमानता का ज्ञान निहित है। परंपरा के नाम पर दुराग्रह रखने वालों से सचेत करते हुए अज्ञेय उन्हें पुरातनपंथी घोषित कर देते हैं। वे कहते हैं कि इनसे "जिस वर्ग की घोषित नीति यह है कि उसके द्वारा ग्राह्य होने के लिए कोई वस्तु या रचना 300 वर्ष पुरानी तो होनी चाहिए, उस वर्ग से

आज की कविता पर बहस करके क्या लाभ? उससे तो 300 वर्ष बाद बात करना अलग होगा- और तब कदाचित वह अनावश्यक होगा क्योंकि आज का प्रयोग तब की परंपरा हो गई होगी- उनकी परंपरा! छायावाद जब एक जीवित अभिव्यक्ति था, तब वह जिन्हें अग्राह्य था, आज वह उसके समर्थक और प्रतिपादक हैं जब वह मृत हो चुका; आज वे उसे बचाना चाहते हैं जिनमें आज का जीवित सत्य अभिव्यक्ति खोज रहा है भले ही अटपटे शब्दों में।"[22] वस्तुत: अज्ञेय एक स्वाधीन, कर्मनिष्ठ चिंतनशील व्यक्ति थे। भारतीय संस्कृति और परंपरा में उन्हें गहरी आस्था थी लेकिन परंपरा के नाम पर किसी प्रकार की जड़ता का समर्थन स्वीकार नहीं था। परंपरा को गहरे आत्मसात करने की बात करते हैं। वे उसे वर्तमान संदर्भों से जोड़-घटाकर उसके मूल अर्थ को समझने, उसे नवीन संदर्भों से परिभाषित करने की बात करते हैं।

अज्ञेय आधुनिकता को एक अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में आधुनिकता से अभिप्राय है नवीन स्थितियों, परिस्थितियों के संदर्भ में अपना परिष्कार तथा नवीनतम को ग्रहण करने की तैयारी। समय में बदलाव के साथ सभी मूल्य अपनी अपनी अर्थछायाएँ बदलते हैं और इसी प्रक्रिया में परंपरा आधुनिकता की निष्पत्ति करती है। इस दृष्टि से परंपरा और आधुनिकता का संबंध द्वंद्व का नहीं बल्कि ये एक दूसरे से अनिवार्य रूप से जुड़ी हैं।[23] आधुनिकता की इस समझ के कारण ही अज्ञेय भारतीयता तथा परंपरा को उसके मूल अर्थ में अत्यंत गहराई के साथ स्वीकार करते हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के बावजूद भारतीय मानस के उपनिवेशवाद के शिकंजे में जकड़े होने की पीड़ा को महसूस करते हैं। तभी तो 'अंतरा' में कह उठते हैं

मिला बहुत कुछ सब बेपेंदी का।
शिक्षा मिली, उसकी नींव भाषा, नहीं मिली।
आजादी मिली, उसकी नींव आत्म गौरव नहीं मिला।
राष्ट्रीयता मिली उसकी नींव अपनी ऐतिहासिक पहचान नहीं मिली।

तारसप्तक के कवियों पर एक आरोप था- साधारणीकरण के सिद्धांत को नहीं मानने का। अज्ञेय इसे भी अस्वीकार करते हुए साधारणीकरण के नए परिप्रेक्ष्य की चर्चा करते हैं। नवीनता के आग्रही अज्ञेय साधारणीकरण को रूढ़ परंपरा की अपेक्षा समसामयिक संदर्भों से जोड़ते हुए स्पष्ट करते हैं कि बदलते समय के साथ साथ सभ्यता का विकास होता है और अनुभूति का क्षेत्र भी विकसित और व्यापक होता है। इन अनुभूतियों के सफल संप्रेषण अथवा साधारणीकरण हेतु प्रयोगों की अनिवार्य आवश्यकता होती है। उनका कथन है कि "हमारे मूल राग विराग नहीं बदले, प्रेम अब भी प्रेम है और घृणा अब भी घृणा... पर यह भी ध्यान रखना होगा कि राग वही रहने पर रागात्मक संबंधों की प्रणालियां बदल गई हैं; और कवि का रागात्मक संबंधों का क्षेत्र होने के कारण इस परिवर्तन का कवि कर्म पर बहुत गहरा असर पड़ा है। ... जैसे जैसे बाह्य वास्तविकता बदलती है; वैसे वैसे हमारी उससे रागात्मक संबंध जोड़ने की प्रणालियां भी बदलती हैं और अगर नहीं बदलती तो उस बाह्य वास्तविकता से हमारा संबंध टूट जाता है।"[24] दूसरा सप्तक की भूमिका में वे कहते हैं कि नयी स्थिति का संप्रेषण पुराने उपकरणों से नहीं हो सकता — "कवि शब्दों को निरंतर नया संस्कार देता चलता है और वे संस्कार क्रमशः सार्वजनिक मानस में बैठकर फिर ऐसे हो जाते हैं कवि के काम के नहीं रहते जैसे "बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।"[25] अपने वक्तव्यों में ही नहीं कविताओं में भी तारसप्तक के कवि रुढ, घिसी हुई भाषा के प्रति विद्रोह व्यक्त करते हुए कह उठते हैं-

कितनी संकुचित जीर्ण, वृद्धा हो गई आज कवि की भाषा। या,
कवि! तोड़ो अपना शब्द जाल जो आज खोखला शून्य हुआ।
(भारत भूषण अग्रवाल, तारसप्तक)

वे स्पष्ट करते हैं कि ये कवि शब्दों में नए अर्थ भरने की चेष्टा करते हैं ताकि जटिल संश्लिष्ट संवेदनाओं को भी व्यक्त करने में समर्थ हो सके। क्योंकि शब्द पुराने पड़ने पर उनका चमत्कारी अर्थ खत्म हो जाता है और वे केवल अभिधार्थ देने लगते है तो उनकी रागात्मक शक्ति भी क्षीण हो जाती है। तब कवि उनमें नए अर्थों की प्रतिपति करता है जिससे उन्हें राग का संचार हो और उन्हें रागात्मक संबंध स्थापित हो, नये तथ्यों को उनके साथ नये रागात्मक संबंध जोड़कर नए सत्यो का रूप दे, उन नये सत्यों को प्रेष्य बनाकर उनका साधारणीकरण करता है। यह जरूर है कि कुछ स्थानों पर कथन संप्रेषणीय होने के स्थान पर दुरूह हो जाते हैं।

कुल मिलाकर दूसरे सप्तक की भूमिका के माध्यम से अज्ञेय ने सिर्फ तारसप्तक के प्रकाशन के पश्चात उठे प्रश्नों

पर विचार करते हुए न सिर्फ उनके तार्किक उत्तर दिए और कवियों की कविताओं पर निरपेक्ष दृष्टि से, उनपर स्वच्छंद सहृदयता से विचार करने का निवेदन किया, अपितु बदलते समय के अनुरूप काव्य, वस्तु एवं रूप में भी बदलाव की अपेक्षा व्यक्त की। उन्होंने परंपरा का मूल्यांकन करते हुए उसकी सही पहचान करने, उसे संघर्ष से अर्जित करने और सांस्कृतिक अवदान के परिप्रेक्ष्य में देखने जानने की वकालत भी की। विभिन्न सप्तकों में शामिल कवियों ने नई समस्याओं और नए दायित्वों का तकाजा अनुभव करते हुए अपनी नई रचनाओं के माध्यम से उस समय के हिंदी काव्य जगत में अपने कृतित्व के माध्यम से आशा की एक नई लौ जगाई। निश्चित तौर पर दूसरा सप्तक की भूमिका में अज्ञेय का वक्तव्य उनके द्वारा उन तमाम का काव्यगत रूढ़ियों के विरुद्ध किए गए उस संघर्ष को बयां करता है जो आधुनिक जीवन की गहन जटिल मन:स्थितियों और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में बाधक सिद्ध हो रही थी।

संदर्भ

1. पृष्ठ-5 (प्राक्कथन), अज्ञेय रचनावली, खंड -1, संपादक- कृष्णदत्त पालीवाल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011
2. अज्ञेय ने दिनमान, नवभारत टाइम्स, सैनिक, विशाल भारत, प्रतीक, नया प्रतीक, वाक आदि पत्र पत्रिकाओं का संपादन किया। http://raj-bhasha-hindi.blogspot.com/2011/03/blog-post_07.html
3. पृष्ठ- 5 (प्राक्कथन), अज्ञेय रचनावली, खंड -1, संपादक- कृष्णदत्त पालीवाल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011
4. पृष्ठ- 379, नयी कविता :स्वरूप और समस्याएं, डॉ जगदीश गुप्त, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 1972
5. पृष्ठ- 16-17, आधुनिक साहित्य, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2003
6. पृष्ठ- 24, आधुनिक साहित्य, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2003
7. पृष्ठ- 143, विचार और विवेचन, डॉ नगेंद्र, गौतम बुक डिपो, संस्करण 1949
8. पृष्ठ- 148, विचार और विवेचन, डॉ नगेंद्र, गौतम बुक डिपो, संस्करण 1949
9. पृष्ठ- 124-126, साहित्य चिंता, डॉ. देवराज, गौतम बुक डिपो, संस्करण 1950
10. पृष्ठ- 13, हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी, निर्मला जैन, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2006
11. भूमिका, तारसप्तक, संपादक- अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1943
12. भूमिका, तारसप्तक, संपादक- अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1943
13. भूमिका, तारसप्तक, संपादक- अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1943
14. पृष्ठ- 263, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1993
15. भूमिका, दूसरा सप्तक, संपादक- अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1951
16. पृष्ठ- 304, अज्ञेय कृत नयी काव्यलोचना, डॉ। राजेश चंद्र पाण्डेय, नमन प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011
17. पृष्ठ- 284, तारसप्तक, संपादक- अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1943
18. पृष्ठ- 88, कविता के नए प्रतिमान, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 1993
19. भूमिका, तीसरा सप्तक, संपादक- अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण 1967
20. भूमिका, दूसरा सप्तक, संपादक- अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1951
21. पृष्ठ- 207, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, देवेन्द्रनाथ शर्मा, मयूर पेपरबैक्स, संस्करण 2017
22. भूमिका, दूसरा सप्तक, संपादक- अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1951
23. पृष्ठ- 43, अज्ञेय कवि कर्म का संकट, कृष्णदत्त पालीवाल, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2010
24. भूमिका, दूसरा सप्तक, संपादक- अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1951
25. भूमिका, दूसरा सप्तक, संपादक- अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1951